ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

ikphu f'k{kk dUnz % ,d fl;gkoyksdu

,y-,e- ogy
E-812, Sec.-11, Pratap Vihar, Main Road Ghajiabad

विश्व में भारतीय संस्कृति का गौरवपूर्ण स्थान है। श्रेष्ठ चिन्तन एवं शुद्ध संस्कारों से ही किसी देश की संस्कृति का निर्माण होता है। संस्कार का विनिर्माण व्यापक शिक्षा–प्रसार एवं शिक्षण–संस्थानो के कुशल संचालन से सम्भव होता है। इस कार्य में कुशल नेतृत्व एंव शासकीय संरक्षण की भी संपुष्ट भाषा और सरल–सुबोध लिपि की भी अनिवार्यता होती है। सौभाग्य से ऊपर वर्णित सभी व्यवस्थाएं भारतभूमि में अति प्राचीन काल से उपलब्ध थी। आज आवश्यकता है कि हम उनका सिंहावलोकन समाज–निर्माण के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के भावी स्वरूप की संकल्पना करें।

अति प्राचीन काल में भारत में विधा और संस्कृति के विकास में ऋषियों, महर्षियों एवं विद्वानों का बड़ा योगदान रहा है। भारतीय संस्कृति के सम्यक अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्म मूर्तरूप में एक व्यक्ति ही नहीं मानों एक संस्था थे। उन्होंने वेद को अपना स्वयं स्वरूप (प्रतीकरूप) में स्थापित किया तथा स्वयं–संरक्षित ज्ञान को सर्वप्रथम वृहस्पति को प्रदान किया, वृहस्पति ने इन्द्र को वेद–ज्ञान दिया, इन्द्र ने भरद्वाज ऋषि को तथा भरद्वाज ने एक विशाल शिक्षण संस्थान की प्रयाग में स्थापना करके उस ज्ञान को अन्य ऋषियों को दिया और उन ऋषियों ने अपने–अपने क्षेत्रों में उसे अनेक विद्वानों को प्रदान किया। इस महान कार्य में गुरूकुलों, चरणों अग्रहारों, विश्वविद्यालयों और विशाल वैदिक धर्मकेन्द्रों, बौद्धविहारों, जैन तीर्थकरों तथा विद्वान राजपुरूषों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ऋग्वेद में अनेक मंत्रदृष्टा, ऋषियों एवं राजाओं के नाम आये हैं। उसमें महत्वपूर्ण आचार्यों का भी नामोल्लेख किया गया है साथ ही उनके क्षेत्र–विशेष में किये गए योगदान पर भी प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार, वेद को 'अखिलों धर्म मूलम'– सांसारिक और आध्यात्मिक क्रिया–कलापों का मूल कहा गया है। इसीलिए, वेदो को भारतीयता का अथवा भारतीय संस्कृति का मूलाधार भी कहा गया है।

हम सभी जानते है कि जीवन और संस्कृति का मूलाधार वैदिक शिक्षा है। प्राचीन काल में शिक्षा के महान केन्द्रों का उल्लेख मिलता है उनमें ऋषिकुलों की महत्वपूर्ण भूमि का थी।

कुछ प्रमुख ऋषिकुल निम्नलिखित उल्लिखित किए गये है –

1. भरद्वाज ऋषिकुल (विश्वविद्यालय) – प्रयाग

2. विश्वामित्र ऋषिकुल (विश्वविद्यालय) – कान्यकुन्ज

3. वशिष्ठ ऋषिकुल (विश्वविद्यालय) – त्रित्सुधन (कालीबंगा)

4. अजि ऋषिकुल (विश्वविद्यालय) – चित्रकूट

5. भृगु ऋषिकुल (विश्वविद्यालय) – और्ववन, (उन्नाव)

6. अगस्त्य ऋषिकुल (विश्वविद्यालय) – दण्डकारण्य

7. अंगिरा ऋषिकुल (विश्वविद्यालय) – मिथिला, ऋषिकेश

इन गुरूकुलों में वेद, वेदांग, येाग, आयुर्वेद धनुर्वेट, धर्मशास्त्र यदि की शिक्षा प्रमुख रूप से दी जाती थी।

उपर्युक्त सभी कृषिकुल मुख्यतया वैदिक शिक्षा के आध्यात्मिक केन्द्र थे। बाद में महाभारत में नये विधा केन्द्रों की स्थापना हुई जो सप्त महापुरियों में अवस्थित थे। सप्रमहापुरियों में अयोध्या, मथुरा, काशी, माया कात्र्व, अवन्तिका, द्वारिका की गणना की जाती थी।

इन्हें मोक्षदायिका भी कहा गया है। मोक्ष बिना ज्ञान के प्राप्त होना कठिन है। कहा भी गया है कि 'ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः' – अर्थात् बिना ज्ञान के मुक्ति संभव नहीं।

महाभारत काल में भी ऋषिकुलों की महिमा बनी रही। (रसैनकाश्रम नैमिषारण्य), धौम्याश्रम द्रोणाचार्याश्रम (अग्निच्छत्र), बद्रिकाश्रम (उत्तरांचल) उनमें प्रमुख थे। ये सभी सुप्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र थे।

जैन–बुद्ध काल में तक्षशिला, राजगृह, उज्जैन, काशी, सारनाथ, साकेत, अयोध्या, कम्पिल, संकाश्य पावा, कुशीनगर, कौशाम्बी आदि शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे।

शुंग–कुषाण, काल में साकेत, कौशाम्बी, मथुरा, सांची, मरहुत, अमरावती, अहिच्छत्रा, शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र थे। 'इस युग में कालिदास, अश्वघोष, नागार्जुन, पतञजलि ठच्चकोर्टि, के कवि एवं आचार्य के रूप में सम्पूर्ण भारत में समाहत थे।

महाभारत काल तक शिक्षण की भाषा संस्कृत थी। उसे राष्ट्रीय वाक् की संज्ञा प्रदान की गई थी। जैन–बुद्ध काल में पाली–प्राकृत का प्रचलन हुआ था।

फिर भी, संस्कृत विद्वानों के बीच आदर के साथ प्रयोग में लाई जाती थी। कुषोण काल में अश्वघोष ने अपने सभी ग्रंथ संस्कृत में ही रचे थे। पुक्ष्यमि़ शुंका के समय पातञजलि, ने दो अश्वमेघ यज्ञ कराये थे जिनमें संस्कृत को ही माध्यम बनाया गया था। उस समय साकेत में संकेत में संस्कृत में यह उद्घोषणा की गई थी कि ''इह्ह पुष्यमित्रम याजयामि''। पुष्यमित्रशंश का द्वि अध्वमेघ याजी' की उपाधि से विद्वानों ने महिमामण्डित भी किया था।

समय ने करवट बदली। गुप्तकाल में संस्कृत भाषा पुनः राष्ट्र–भाषा के पद पर आरूढ़ हुई। अश्वमेघ यज्ञों का प्रचलन बढ़ा। यहाँ तक सिक्कों पर अश्वमेघ यज्ञ के प्रदर्शन से यज्ञों के प्रसार का प्रयत्न किया गया तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल म्रें वाहलीक तक एक बार पुनः भारतीय, राजसत्ता का प्रभाव स्थापित किया गया। दिल्ली के लौह–स्तम्भ पर इसका स्पष्ट उल्लेख है। नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालय में संस्कृत के साथ पाली तथा प्राकृत भाषाओं का प्रयोग शिक्षा के माध्यम के रूप में अवश्य प्रचलित रहा, किन्तु संस्कृत भाषा के प्रचलन में भी विद्वनों का सराहनीय योगदान रहा। अधिकांश अभिलेख जिनका सीधा सम्बन्ध साधारण जनता से भी रहता है संस्कृत भाषा में ही अंकित पाये गये है।

उच्चशिक्षा के प्रचार–प्रसार में कुल–गुरू और 'कुलपति' शब्दों का प्रयेाग प्राचीन ग्रंथो मे इस बात का उल्ल्ेख मिलता है कि विश्वविद्यालय की संज्ञा उन्हीं शिक्षण संस्थानों को दी जाती थी

जिनमें कम से कम 3000 (तीन हजार) विद्यार्थी विभिन्न विषयों में शिक्षा प्राप्त करते थे। शौनक नैमिषारण्य विश्वविद्यालय के कुलपति थे (पभपुराण, 1.1.2)/उसमें दस हजार छात्र थे।

विष्णुपुराण (3.7.28–29) के अनुसार इन विश्वविद्यालयों में 18 (अट्ठारह) विधाओं का अध्ययन–अध्यापन होता था। लक्षशिला विश्वविद्यालय में भी 18 विधाए पढ़ाई जाती थी। उस विश्वविद्यालय के कुलपति पार्णिनि थे। वे 26वें महान वैयाकरणाचार्य माने जाते हैं। वेद को भगवान की संज्ञा दी गई है। ''पार्णिनि शिक्षा'' में लिखा है कि वेद भगवान की नासिका शिक्षा, कल्प हाथ, व्याकरण मुख, निरूक कान, छन्द पैर और व्याकरण आंखें है।

इन षडांगो के प्रकाश में आने से साहित्य में नई विज्ञान विधियों का समावेश हुआ था यह परम्परा निरन्तर उत्तरोत्तर विकसित होती गई। (वाचस्पति गैरोला ' वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ 129)

वैदिक शिक्षा – परम्परा की चरम परिणति गुप्तकाल मे हुई। अहिच्छत्रा से प्राप्त एक गुप्त कालीन मुद्रा प्राप्त हुई है जिस पर कुलपति वसुवर्मा का नाम अंकित हैं वैदिक काल की परिचक्रा और महाभारत काल की अछिच्छत्रा का उल्लेख एक सांस्कृतिक एवं शिक्षा–केन्द्र के रूप में प्राचीन साहित्य में मिलता हैं उस समय यह उत्तर पांचाल प्रदेश की राजधानी थी। बौद्ध और जैन साहित्य में भी इसका यथेष्ट वर्णन है।

पुरातत्व की दृष्टि से भी यह क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आज भी यहां से यदा कदा पुरा–सम्पदा मिलती रहती है। कुछ दिनों पहले अहिच्छत्रा कोट के अन्तर्गत भीमगदा क्षेत्र से एक ताम्रमुद्रा (Copper seal) संयोगवश प्राप्त हुई जिसके अवलोकन एंव अध्ययन करने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ।

आयताकार यह मुद्रा ताम्बे के एक छोटे से धातुखण्ड पर उकेरी गयी है। यह करीब 2.5x2.25x3 से0मी0 लम्बी, चौड़ी व मोटी है। इसका एक भाग समतल सपपाट है तथा दूसरे भाग पर एक लघु लेख अंकित है। ब्रह्मी लिपि में इस पर दो पंक्तियां अंकित है। प्रत्येक पंक्ति में पांच–पांच अक्षरों का अंकन बहुत ही सुस्पष्ट ढ़ंग से किया गया है। मुद्रा के एक छोर पर

करीब 1.5 से0मी0 ऊँचे एक त्रिशुल का प्रदर्शन बहुत ही प्रभावोत्पादक रूप से किया गया है। त्रिशूल के लम्बे दण्ड के मध्य से एक लघु परशु बाहर ओर निकलते हुए स्पष्ट दर्शाया गया है।

मुद्रा पर उकेरे अक्षरों के अध्ययन से पता लगता है कि इनका अंकन गुप्तकालीन ब्रह्मी लिपि में कलापूर्ण ढ़ंग से सम्पादित किया गया है। इनके पाठन से जो लेख उभर कर सामने आता है वह इस प्रकार से है–

प्रथम पंक्ति– कुलपतिस्य

द्वितीय पंक्ति– वसुत्रर्मस्य

इसका अर्थ – कुलपति वसुवर्मा की (मुद्रा) निकलता है। काशी विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध पुराभिलेखशास्त्री प्रोफेसर टी0पी0 वर्मा एवं लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रो0 किरणकुमार थपल्याल इस पाठ से पूर्णतः सहमत है।

ब्रह्मी लिपि के विकास एंव लिपिशास्त्रीय दृष्टि से मुद्रा पर अंकित लेख का सम्पादन चौथी शताब्दी ई0 (गुप्त काल) में हुआ प्रतीत होता हैं लेख की भाषा संस्कृत है। भाषा की दृष्टि से 'कुलपतिस्य' शब्द में विभक्ति दोष है। विभक्ति–दोष मुद्रालेखों में प्रायः मिलता है। अतः यह मुद्रा अहिच्छत्रा का एक गुप्तकालीन अभिलेखीय प्रमाण प्रस्तुत करती है। डा0 टी0पी0 वर्मा तथा डा0 ए0एल0 श्रीवास्तव का भी इस विषय पर यही मत है। पूर्व के उत्खनन में यहां से गुप्तकालीन मिट्टी की एक मुद्रा मिली थी, जिस पर अंकित लेख है–

''श्री अहिच्छत्रा भुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य''

इससे यह पुश्ट होता है कि गुप्त–शासनकाल में अहिच्छत्रा गुप्त–साम्राज्य की एक भुक्ति था। निःसदेश यह ताम्रमुद्रा गुप्तकाल की यहां से एक और नवीन उपलब्धि है।

मुद्रा पर लेख के अतिरिक्त त्रिशूल व परशु का अंकन सम्भवः विशेष उद्दश्य हेतु हुआ है। इसका अंकन एक छोटे से धातु–पिण्ड पर प्रभावी रूप से करना यह इंगित करता है कि इसका सम्बन्ध शैव सम्प्रदाय से था। सम्भवतः इसका प्रयोग शैव मठ, संस्था, संगठन या महाविद्यालय के संचालन हेतु होता होगा। अहिच्छत्रा की दशा पर यथेष्ट प्रकाश पड़ा है और भग्नावस्था में विद्यमान भवनों में विशेष उल्लेखनीय गुप्तकालीन शिव–मन्दिर (भीमगदा) तथा उसका विशाल शिव–लिंग है। इस विशाल मन्दिर के प्रकाश ने आने से उसके धार्मिक–आध्यात्मिक स्वरूप का महत्व उजागर है। सम्भवतः यह नगर आध्यात्म, धर्म तथा दर्शन के चिन्तन–मनन का मुख्य केन्द्र रहा होगा जिसके संचालन व व्यवस्था हेतु शासन द्वारा वसुवर्मा को कुलपति पद पर नियुक्त किया गया होगा। कुशल अनुशासन, व्यवस्था व संचालन करने हेतु शासन द्वारा यह ताम्रमुद्रा वसुवर्मा को प्रदत्त की गयी होगी। इस विषय पर एक और बात ध्यान देने योग्य है वह कि इस मुद्रा का धातु में होना, जो अपने में स्वयं एक विशेषता है। माम्रमुद्रा यह सिद्ध करती है कि इसका उपयोगकर्त्ता तथा पद अवश्य ही महत्वपूर्ण रहे होगें। अन्यथा शासन चलाने हेतु मिट्टी की मुद्रा ही पर्याप्त होती। अतः गुप्त शासनकाल में कुलपति वसुवर्मा अवश्यक उच्चपदस्थ अति विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण कुलपति रहे होगें। सम्भव है इस मुद्रा का कोई अन्य प्रयोजन रहा हो। उसकी ओर विद्वान मुद्राशास्त्री एवं इतिहासवेत्ता प्रकाश डाल सकते है। ताम्रमुद्रा का प्रकाशन इसी उद्देश्य से कराया जा रहा है ताकि इस प्रकार पर और अधिक अध्ययन एवं अन्वेषण किया जा सके।

I UnHk & xUFk

1. आरकियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट्स 2. बाजपेयी, के0डी0, अहिच्छात्रा, लखनऊ 1956
3. बाजपेयी, के0डी0 Ahichhatra Through The Ages, Kanpur, 1988
4. अग्रवाल, वासुदेारण, Ancient India, No. 4, 1947-48
5. वाचस्पति गैरोला : वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ0 129